समुतल्य साइटेशन/उद्धरणः ए.आई.आर. 1952 पैट 309

पटना उच्च न्यायालय में

पूर्ण पीठ

विविध न्यायिक मामला सं. 165/1951

निर्णय दिनांकः 25.03.1952

अपीलकर्ताः बाबुल चंद्र मित्र के कानूनी मामलें में

भारत का संविधान - अनुच्छेद 228 तथा 226

अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका जिसमें उच्च न्यायालय के प्रशासनिक शाखा के खिलाफ आदेश की मांग की गई कि याचिकाकर्ता को अधिवक्ता के रुप में नामांकित किया जाये।

तीन न्यायमूर्तियों के खंडपीठ ने एकल निर्णय लेकिन भिन्न विचारों को व्यक्त करते हुये दिया कि **उच्च-न्यायालय का न्यायिक प्रशाखा उच्च न्यायालय के प्रशासनिक प्रशाखा को यह आदेश नहीं दे सकती**।

रिट याचिका को खारिज किया गया।

[पारा 6,9,13,14]

समुतल्य साइटेशन/उद्धरणः ए.आई.आर. 1952 पैट 309

पटना उच्च न्यायालय में

पूर्ण पीठ

विविध न्यायिक मामला सं. 165/1951

निर्णय दिनांकः 25.03.1952

अपीलकर्ताः **बाबुल चंद्र मित्र के कानूनी मामलें में**

माननीय न्यायाधीशगण/कोरमः

डेविड एजरा रूबेन, वैद्यनाथियर रामास्वामी और सिन्हा, न्यायाधीशगण

वकीलगणः-

अपीलार्थी के लिएः बी.सी. घोष, अधिवक्ता

विद्वान महाधिवक्ता, न्यायमित्र

निर्णय

वैद्यनाथियर रामास्वामी, न्यायाधीश

1. इस मामले में याचिकाकर्ता बाबुल चंद्र मित्रा ने उच्च न्यायालय से अनुरोध किया है कि संविधान के अनुच्छेद 228 के तहत उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष को एक रिट या निर्देश जारी कर पूछा जाय कि याचिकाकर्ता को एक वकील के रूप में नामांकित किया जाना चाहिए।

2. आवेदन निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है। बाबुल चंद्र मित्रा ने वर्ष 1937 में पटना विश्वविद्यालय से कानून में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। अगले साल उन्होंने मुज़फ़्फ़रपुर में

प्रैक्टिस करने के लिए प्लीडर के रूप में नामांकित होने के लिए आवेदन किया। इस याचिका को हाईकोर्ट ने खारिज कर दिया था। 1939 में और फिर 1943 में आवेदक ने अपने मामले पर पुनर्विचार करने के लिए कहा। लेकिन उच्च न्यायालय ने माना कि पिछले निर्णय को बदलने का कोई कारण नहीं था और नामांकन को अस्वीकार करने का निर्णय सही था। 1945 में आवेदक स्वर्गीय श्रीनारायण बोस, अधिवक्ता के प्रकोष्ठ में शामिल हुए और एक वर्ष की अवधि के लिए प्रशिक्षण लिया। 9 अक्टूबर 1950 को उन्होंने एक अधिवक्ता के रूप में नामांकित होने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया और अपने आवेदन के साथ अच्छे आचरण के तीन प्रमाण पत्र संलग्न किए। 8 जनवरी 1951 को बार काउंसिल को आवेदन की सूचना दिए बिना उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन को खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता का तर्क है कि यह आदेश देते हुए उच्च न्यायालय ने कानून के विपरीत काम किया है और याचिकाकर्ता के पेशे का अभ्यास करने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है।

3. इस कार्यवाही में उच्च न्यायालय के आदेश की वैधता को इन आधारों पर चुनौती दी गई हैः(1) कि विधिज्ञ परिषद के नियम 9 के तहत विधिज्ञ परिषद को संदर्भित किए बिना नामांकन के लिए आवेदन को कानूनी रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है; (2) कि किसी भी मामले में विधिज्ञ परिषद अधिनियम की धारा 9 (1) का प्रावधान संवैधानिक रूप से अमान्य था क्योंकि उच्च न्यायालय को अपने अनियंत्रित विवेक से किसी भी व्यक्ति को प्रवेश से इनकार करने की शक्ति दी गई थी और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (जी) के तहत गारंटी का उल्लंघन किया गया था।

4. प्रारंभिक प्रश्न जो उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या वर्तमान मामले में इस पीठ के पास अपने प्रशासनिक पक्ष के खिलाफ उच्च न्यायालय को एक रिट या आदेश जारी करने का अधिकार क्षेत्र है।

5. इस प्रश्न के प्रस्ताव करने में भारतीय विधिज्ञ परिषद अधिनियम और पटना उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करना आवश्यक है। भारतीय बार काउंसिल अधिनियम की धारा 8 के तहत कोई भी व्यक्ति किसी भी उच्च न्यायालय में वकालत करने के अधिकार का हकदार नहीं होगा, जब तक कि उसका नाम अधिनियम के तहत बनाए गए उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं की सूची में दर्ज नहीं किया जाता है। धारा 8 (2) में अपेक्षा की गई है कि उच्च न्यायालय उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं की एक सूची तैयार करेगा और उसका रखरखाव करेगा जिसमें उन सभी व्यक्तियों के नाम दर्ज किए जाएंगे जिन्हें इस अधिनियम के तहत उच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में भर्ती किया गया है। धारा 9 के तहत विधिज्ञ परिषद, उच्च न्यायालय की पूर्व मंजूरी के साथ, उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं के रूप में व्यक्तियों के प्रवेश को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है। लेकिन एक महत्वपूर्ण प्रावधान है कि ऐसे नियम किसी भी व्यक्ति को अपने विवेक से प्रवेश से इनकार करने की उच्च न्यायालय की शक्ति को सीमित या किसी भी तरह से प्रभावित नहीं करेंगे। लेटर्स पेटेंट के खंड (7) भी इस प्रकार वर्णित हैः-"और हम-इसके द्वारा हम पटना उच्च न्यायालय को ऐसे और इतने सारे अधिवक्ताओं, वकीलों और अधिवक्ताओं को अनुमोदित करने, स्वीकार करने और नामांकित करने के लिए अधिकृत और सशक्त करते हैं, जो उक्त उच्च न्यायालय को उचित प्रतीत हों, और ऐसे अधिवक्ता, वकील और वकील उक्त उच्च न्यायालय के वादियों की ओर से उपस्थित होने के लिए और उक्त वादियों के लिए वाद करने या कार्य करने, या वाद करने और कार्य करने के लिए अधिकृत होंगे, जैसा कि उच्च न्यायालय अपने नियमों और निर्देशों द्वारा निर्धारित कर सकता है।

6. इस मुद्दे पर सवाल यह है कि क्या इस पीठ के पास वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय को विधिज्ञ परिषद अधिनियम के तहत या लेटर्स पेटेंट के तहत कार्यों के निष्पादन में एक रिट या निर्देश जारी करने का अधिकारिता है है। याचिकाकर्ता की ओर से श्री बी. सी. घोष ने

तर्क दिया कि संविधान का अनुच्छेद 226 का व्यापक रूप है और उच्च न्यायालय के पास किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए 'किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण' को निर्देश या आदेश या रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र है। उनके तर्क के समर्थन में वकील ने अनुच्छेद में 'किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण' वाक्यांश पर बहुत जोर दिया। मेरी राय में तर्क एक गलत अव-धारणा की ओर आगे बढ़ता है, और विद्वान वकील द्वारा सुझाए गए तरीके से अनुच्छेद 226 का अर्थ लगाने के लिए कोई आवश्यकता नहीं है। यह कहना निश्चित रूप से सही नहीं हो सकता है कि उच्च न्यायालय अपने द्वारा किए गए आदेश को रद्द करने के लिए सीधे अपने खिलाफ एक रिट या आदेश जारी कर सकता है। यह मायने नहीं रखता कि आदेश देने में, उच्च न्यायालय न्यायिक या प्रशासनिक भूमिका में कार्य करता है या नहीं। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के पास किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति है। यह स्पष्ट है कि प्रक्रिया के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अपने लिए एक रिट जारी नहीं की जा सकती है, बल्कि यह बेतुकी स्थिति है कि यह न्यायाधीशों से खुद को कारण दिखाने के लिए कहता है कि उन्हें उनके द्वारा पारित आदेश को रद्द करने का निर्देश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए जिसे उन्होंने स्वयं निर्धारित किया है। सिद्धांत रूप में यह भी स्पष्ट है कि एक न्यायाधीश को किसी समान अधिकारिता वाले अन्य न्यायाधीश को रिट या आदेश जारी करने की अधिकारिता नहीं है। रिटों के यही नामकरण-"परमादेश, उत्प्रेषण-लेख, निषेधाज्ञा" का अर्थ है उच्च शक्ति-एक वरिष्ठ प्राधिकारी की शक्ति जो एक अधिकारी या निचली न्यायाधिकरण को एक निश्चित तरीके से कार्य करने के लिए मजबूर करती है। यही कारण है कि एक निचली न्यायालय को एक उच्च न्यायाधिकरण के संचालन को नियंत्रित करने से रोकता है। एक न्यायाधीश के समन्वय क्षेत्राधिकार और शक्ति के दूसरे न्यायाधीश की कार्रवाई को मजबूर करने के प्रयास पर समान रूप से अकाट्य तरीके से लागू होता है। वर्तमान मामले में यह स्पष्ट है कि इस पीठ के पास उच्च न्यायालय को कोई रिट या निर्देश या आदेश जारी करने का कोई

अधिकार क्षेत्र नहीं है, जिसमें उसे याचिकाकर्ता को अधिवक्ता के रूप में नामांकित करने या यहां तक कि नामांकन के लिए उसके आवेदन पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

7. उपरोक्त राय को पूर्व निर्णयों द्वारा समर्थन मिलता है। 'रेक्स बनाम जस्टिस ऑफ द केन्द्रीय आपराधिक न्यायालय (1925) 2 केबी 43 में, यह सवाल उठा कि क्या उच्च न्यायालय के राज(किंग्स) न्यायपीठ प्रभाग को उस न्यायालय में केंद्रीय आपराधिक न्यायालय के एक आदेश को रद्द करने की दृष्टि से हटाने के उद्देश्य से उत्प्रेषण-लेख की रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र था। प्रश्नगत आदेश 1834 के केंद्रीय आपराधिक न्यायालय अधिनियम की धारा 20 के तहत दिया गया था, जिसने केंद्रीय आपराधिक न्यायालय को अपने अधिकारियों को दिए जाने वाले शुल्क और भत्तों या वेतन का निपटान करने का अधिकार दिया था। स्थानीय सरकार अधिनियम, 1888 के पारित होने के परिणामस्वरूप, यह निर्धारित करना आवश्यक हो गया कि उक्त वेतन और व्यय का भुगतान किसके द्वारा और किस अनुपात और तरीके से किया जाना चाहिए। केंद्रीय आपराधिक न्यायालय के न्यायाधीशों ने आदेश दिया कि वेतन और खर्च का भुगतान लंदन, मिडिलसेक्स, सरे और एसेक्स के काउंटी के कोषागारों द्वारा निश्चित अनुपात में किया जाना चाहिए। एक अन्य आदेश द्वारा केंद्रीय आपराधिक न्यायालय ने निर्देश दिया कि कुछ सेवाओं के लिए मानदेय के रूप में न्यायालय के क्लर्क हर्बर्ट ऑस्टिन को देय A£1,000 की राशि का भुगतान उक्त काउंटी के खजानेदारों द्वारा समान अनुपात में किया जाना चाहिए। केंद्रीय आपराधिक न्यायालय के इस आदेश के खिलाफ लंदन काउंटी परिषद ने केंद्रीय आपराधिक न्यायालय से यह कारण बताने के लिए एक रिट मांगी कि प्रमाणपत्र की उत्प्रेषण-लेख की रिट क्यों जारी नहीं की जानी चाहिए।

महान्यायवादी ने सुनवाई में आपत्ति जताई कि किंग्स पीठ प्रभाग के पास उत्प्रेषण-लेख की रिट जारी करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है क्योंकि कोर्ट ऑफ एसाइज एक उच्च

न्यायालय है। लेकिन लंदन काउंटी काउंसिल की ओर से यह तर्क दिया गया कि केंद्रीय आपराधिक न्यायालय धारा 20 के तहत कार्य करते समय कोर्ट ऑफ ऑयर एंड टर्मिनर की शक्तियों का प्रयोग नहीं कर रहा था, बल्कि एक निचली न्यायालय के रूप में विशुद्ध रूप से वैधानिक और प्रशासनिक चरित्र की शक्तियों का प्रयोग कर रहा था। राज न्यायपीठ ने इस तर्क को खारिज कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि केंद्रीय आपराधिक न्यायालय के आदेश को लाने के लिए उत्प्रेषण लेख रिट जारी करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है ताकि इसे रद्द किया जा सके। पेज 60 पर, एवरी, न्यायाधीश, कहता हैः

> "मैं समझता हूं कि उस प्रस्ताव पर सर लेस्ली स्कॉट ने कोई विवाद नहीं किया है, लेकिन उनका कहना है कि या तो केंद्रीय आपराधिक न्यायालय उस नियम के अर्थ के भीतर एक निचली न्यायालय है, या यदि यह सभी उद्देश्यों के लिए एक निचली न्यायालय नहीं है, तो 1834 के अधिनियम की धारा 20 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के उद्देश्य से यह एक निचली न्यायालय है, जो इस न्यायालय की अभिमानी अधिकारिता के अधीन है। पहली नजर में यह कहना सही नहीं होगा कि कोई भी न्यायालय स्वयं द्वारा दिए गए आदेश को रद्द करने के लिए स्वयं को निर्देशित उत्प्रेषण-लेख रिट जारी कर सकता है। हालाँकि, इस प्रस्ताव के समर्थन में जो प्रस्ताव आगे बढ़ाया गया है, वह यही है। इस न्यायालय के सभी न्यायाधीशगण केंद्रीय आपराधिक न्यायालय के न्यायाधीश हैं, जिन्हें 1834 के अधिनियम की धारा 2 के अनुसार न्यायाधीशों से संबंधित सभी शक्तियों और प्राधिकरणों का उपयोग और प्रयोग करना है एवं ओयर एवं टर्मिनर एवं लक्ष्य प्रदान करने का प्राधिकारीगण । प्रश्नगत आदेश, क्योंकि यह केंद्रीय आपराधिक न्यायालय का एक आदेश है, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि यह इस न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा किया गया है। यह मायने नहीं रखता कि किस दो विशेष न्यायाधीशों द्वारा आदेश पर हस्ताक्षर

किए गए हैं, क्योंकि केंद्रीय आपराधिक न्यायालय का आदेश होने के कारण यह प्रभावी रूप से इस न्यायालय के न्यायाधीशों का आदेश है।"

8. 'स्किनर बनाम नॉर्थलर्टन काउंटी न्यायालय न्यायाधीश' (1898) 2 क्यू बी 680 का भी संदर्भ दिया जाना चाहिए, जिसमें एक समान प्रश्न उत्पन्न हुआ था। उस मामले में क्वीन बेंच डिवीजन था। दिवालियापन में बैठे नॉर्थलर्टन में काउंटी अदालत के न्यायाधीश के आदेश को लाने के लिए उत्प्रेषण-लेख के एक रिट के जारी के लिए एक नियम निसी का निर्वहन किया, और अपील पर, वॉन विलियम्स, एल. जे. ने कहाः

"जिन मामलों में एक उत्प्रेषण-लेख अपने अधिकार क्षेत्र से अधिक निचली न्यायालय के आदेश को लाने के लिए गया है, यहां तक कि जहां एक उत्प्रेषण-लेख को कानून द्वारा छीन लिया गया है, मुझे वर्तमान मामले को छूने के लिए नहीं लगता है, क्योंकि 'इन रे पार कंसोल्स (नंबर 2) (1898) 1 क्यू बी 669 में निर्णय का आधार यह था कि काउंटी कोर्ट का न्यायाधीश उस मामले में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा था जिसमें क़ानून ने उसे सोसित दिया था, वह एक निचली न्यायालय नहीं था, क्योंकि ऐसे मामले में कानून ने उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सभी शक्तियां दी थींः पृ. 686 पर 'स्किनर बनाम काउंटी कोर्ट जज ऑफ नॉर्थलर्टन 1 (1898) 2 क्यू बी 680 पी।"

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहाः

"उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए निषेध या उत्प्रेषण-लेख द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है, लेकिन केवल अपील द्वारा और यदि दिवालियापन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए काउंटी न्यायालय का न्यायाधीश, जैसा कि 'इन कानूनी मामलों में नए पार कंसोल (संख्या 2) में निर्णय से मामला प्रतीत होता है, एक समान आधार पर रखा गया है, तो वह कानून और तथ्य

का न्यायाधीश है, और उसके निर्णय केवल अपील के अधीन हैं, और उनकी समीक्षा उत्प्रेषण-लेख द्वारा नहीं की जा सकती है।"

9. श्री घोष द्वारा वैकल्पिक रूप से यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय के सहायक निबंधक को एक रिट या निर्देश जारी या निर्देशित किया जा सकता है। विद्वान वकील द्वारा यह बताया गया कि सहायक निबंधक ने 8 जनवरी 1951 के अपने पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को आदेश दिया था कि उनका आवेदन खारिज कर दिया गया है। यह तर्क दिया गया था कि न्यायालय के पास सहायक निबंधक को एक रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र है। विद्वान वकील ने 'अश्विनी कुमार घोष बनाम अरबिंदो बोस' 56 कैल डब्ल्यू एन 145 पर भरोसा किया, लेकिन उस मामले के भौतिक तथ्य पूरी तरह से अलग थे। सैद्धांतिक रूप से, यह मानना मुश्किल है कि एक ऐसे व्यक्ति के खिलाफ परमादेश की रिट दी जा सकती है जो एक निम्न या मंत्री अधिकारी है जो उसे कुछ ऐसा करने के लिए मजबूर करने के लिए उच्च प्राधिकारी के आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य है जो उस क्षमता में उसके कर्तव्यों का हिस्सा है। इस सिद्धांत को अधिकारियों द्वारा बनाए रखा जाता है।

'किंग बनाम ब्रिस्टो' (1795) 6 कार्यकाल प्रतिनिधि 168 में, राज न्यायपीठ के न्यायालय ने एक मंत्री अधिकारी को, जैसे कि एक काउंटी के खजांची को, तिमाही सत्र न्यायालय के आदेश का पालन करने के लिए एक आदेश देने से इनकार कर दिया; इस तरह के आदेश का पालन करने से इनकार करने के मामले में उचित उपाय करना अभियोग द्वारा था। लॉर्ड केन्यन, मुख्य न्यायाधीश ने कहाः

"यह अक्सर लॉर्ड मैन्सफील्ड द्वारा कहा गया है कि एक परमादेश एक बहुत ही लाभकारी रिट था और इसे संरक्षित करने का सबसे अच्छा तरीका इसके उपयोग में बचत करना था। उस सावधानी को वर्तमान की तुलना में किसी भी मामले में अधिक ठीक से लागू नहीं किया जा सकता है; हालाँकि मुझे इसमें कोई बड़ी कठिनाई प्रतीत

नहीं होती है। इस न्यायालय को न्यायाधीशों को परमादेश देने के लिए एक आदेश देने में उनके सामने रखे गए उचित मामले पर कोई कठिनाई नहीं है, जब वे अपना कर्तव्य निभाने से इनकार करते हैं। लेकिन उस आदेश का पालन करने के लिए निचले स्तर के अधिकारियों को एक आदेश देना बहुत कम होगा; हम एक कांस्टेबल, या अन्य मंत्री अधिकारी को इस तरह की रिट जारी कर सकते हैं, ताकि वह उसे निर्देशित एक आदेश को निष्पादित करने के लिए मजबूर कर सके, ताकि यह आवेदन खज़ानची को प्रश्नगत आदेश का पालन करने के लिए दिया जा सके।"

इसी तरह के प्रभाव के लिए 'किंग बनाम जेयस' (1835) 3 ए. ई. एल. 416 है जिसमें न्यायालय ने किसी जिले के खजांची को कदाचार के लिए अभियोजन के खर्च का भुगतान करने के लिए मजबूर करने के लिए एक आदेश ऐसेज के न्यायालय के आदेश का अनुपालन देने से इनकार कर दिया। लॉर्ड डेनमैन, मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि "प्रतिवादी मजिस्ट्रेट का सेवक था और अदालत ने अपने अधिकारी को अपने कर्तव्यों का पालन कराने के लिए मजिस्ट्रेट की स्थिति में खुद को रखने से इनकार कर दिया। "

10. इन विचारों को ध्यान में रखते हुए मेरी राय है कि इस आवेदन को खारिज किया जाना चाहिए।

11. यह उल्लेख करना सही है कि तर्क के दौरान हमने श्री बी. सी. घोष को सुझाव दिया कि वर्तमान आवेदन को उसके आदेश पर पुनर्विचार के लिए बार काउंसिल नियमों के नियम 9 के तहत उसके प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन विद्वान वकील ने जोर देकर कहा कि इस मामले पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए और निपटा जाना चाहिए।

डेविड एजरा रूबेन, न्यायाधीश

12. मैं सहमत हूँ, लेकिन एक ऐसे मामले की व्याख्या करते हुए कुछ शब्द जोड़ना चाहता हूँ जिस पर श्री बसंत चंद्र घोष ने कुछ जोर दिया है। 8 जनवरी 1951 को उच्च न्यायालय के सहायक निबंधक ने श्री बाबुल चंद्र मित्रा को पत्र लिखकर सूचित किया कि उनका आवेदन खारिज कर दिया गया है (पेपर-बुक का पृष्ठ 14)। उच्च न्यायालय के आदेश की प्रति के लिए आवेदन करने पर श्री मित्रा को माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षरित 3 जनवरी (1951) के एक कार्यवृत्त की प्रति दी गईः"मुझे पिछले फैसलों को बदलने का कोई कारण नजर नहीं आता। (पेपर-बुक का पृष्ठ 10)। उनके द्वारा एक और आवेदन किए जाने पर उच्च न्यायालय के कार्यालय ने बताया कि "बार काउंसिल अधिनियम के तहत कोई पिछला निर्णय नहीं था"। (पेपर-बुक का पृष्ठ 15)। इन तथ्यों से श्री घोष ने तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय द्वारा उनके मुवक्किल के आवेदन को खारिज करने का कोई आदेश नहीं था और सहायक निबंधक ने 8 जनवरी 1951 को अपना पत्र जारी करने में बिना किसी अधिकार के काम किया। यही कारण था कि श्री घोष ने सहायक निबंधक के खिलाफ अनुच्छेद 226 के तहत निर्देश जारी करने का सुझाव दिया।

13. तर्क एक गलत धारणा पर आधारित है। श्री मित्रा के आवेदन को पूर्ण न्यायालय, यानी सभी न्यायाधीशों को प्रसारित किया गया था, और प्रत्येक न्यायाधीश ने आवेदन पर पारित किए जाने वाले उचित आदेश के बारे में एक अलग कार्यवृत्त में अपनी राय दर्ज की। एक प्रति देने में कार्यालय ने जिसे न्यायालय के आदेश के रूप में माना है, वह माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा दर्ज किया गया कार्यवृत्त है। यह जरूरी नहीं कि न्यायालय का निर्णय हो। न्यायालय की प्रथा के अनुसार, निर्णय अधिकांश न्यायाधीशों की राय है जैसा कि उनके कार्यवृत्त में दर्ज है, और यह वह निर्णय है जिसे सहायक निबंधक द्वारा 8 जनवरी 1951 के अपने पत्र में सूचित किया गया है। पेपर-बुक के पेज 15 पर कार्यालय नोट को ध्यान में

रखते हुए, माननीय मुख्य न्यायाधीश के कार्यवृत्त के कुछ स्पष्टीकरण की मांग की जाती है। श्री मित्रा द्वारा कई आवेदन दायर किए गए थे, प्लीडर के रूप में नामांकन के लिए सबसे पहले तीन आवेदन थे। इन सभी को अदालत ने खारिज कर दिया था। फिर उच्च न्यायालय के अधिवक्ता के रूप में नामांकन के लिए दो आवेदन थे। पहला फरवरी 1947 में उनके द्वारा वापस लिया गया था। दूसरा वह था जिससे कार्यवृत्त संबंधित है। जब दूसरा आवेदन पूर्ण न्यायालय को प्रसारित किया गया था, तो पिछले आवेदनों से संबंधित कार्यवृत्त के लिए संदर्भ दिए गए थे। इन कार्यवृत्तों के संदर्भ में, जिनमें से अधिकांश श्री मित्रा के नामांकन के खिलाफ थे, माननीय मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि उन्हें "पिछले निर्णयों को संशोधित करने का कोई कारण नहीं दिखाई दिया। "हालांकि कड़ाई से कहें तो बार काउंसिल अधिनियम के तहत कोई पिछला निर्णय नहीं था, एक वकील के रूप में नामांकन के लिए पिछले आवेदन को वापस ले लिया गया था, माननीय मुख्य न्यायाधीश का क्या मतलब था, यह स्पष्ट है और उनकी राय पूर्ण न्यायालय के बहुमत से सहमत थी।

सिन्हा, न्यायाधीश

14. मैं सहमत हूँ कि आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह न्यायालय अपने प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर इनमें से कोई भी विशेषाधिकार रिट जारी नहीं कर सकता है क्योंकि वे न्यायिक पक्ष में बैठे इस न्यायालय से कमतर नहीं हैं। इस न्यायालय के लगभग सभी न्यायाधीशों ने एक या दूसरे तरीके से खुद का राय व्यक्त किया था। जब एक अधिवक्ता के रूप में नामांकन के लिए आवेदक का आवेदन इस न्यायालय के सदस्यों को परिचालित किया जा रहा था, और इनमें से किसी एक रिट का मुद्दा हमारी अपनी सेवा के खिलाफ इन रिटों को जारी करने के बराबर होगा। यह वास्तव में एक हास्यास्पद स्थिति होगी। श्री घोष ने इस कठिनाई को महसूस करते हुए तर्क दिया कि इस न्यायालय के सहायक निबंधक के खिलाफ जारी करने के लिए मांगा गया रिट,

जिसे याचिकाकर्ता को दिए गए इस न्यायालय के निर्णय के संचार को वापस लेने का आदेश दिया जाना चाहिए। सहायक निबंधक ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए केवल पूर्ण न्यायालय के निर्णय को याचिकाकर्ता को सूचित किया था और स्पष्ट कारणों से सहायक निबंधक को ऐसी कोई रिट जारी नहीं की जा सकती थी।

खण्डन (डिस्क्लेमर):- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।